International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 29-09-2022, Accepted: 14-10-2022, Published: 01-11-2022
Volume 4, Issue 2, 2022, Page No. 8-11

यति धर्म एवं स्त्री

साध्वी अनुग्या[1], डा. मैथिली प्र. राव[2]
[1] शोधार्थी, सांस्कृतिक अध्ययन विभाग, जैन (अभिमत पात्र विश्वविद्यालय), जयनगर, बेंगलूरु, कर्नाटक, भारत
[2] प्रोफ़ेसर, जैन (अभिमत पात्र विश्वैद्यालय), जयनगर, बेंगलूरु, कर्नाटक, भारत

सांराश
समाज एवं संस्कृति के एक महत्वपूर्ण पहलू के रूप में उभरता है धर्म । धर्म की विकास यात्रा अपने आप में एक बहुत ही जटिल प्रयत्न रहा है। इससे भी बढकर कठिन रहा है धार्मिक परिवेश में स्त्री को समान अवसर प्रदान करना या पुरुषों की भांति उन्हें भी अनेक अधिकार प्राप्त होना । एक ओर, कई लोग मानते हैं कि धर्म स्वाभाविक रूप से दमनकारी संस्था है, जो स्वभाव से महिलाओं को बाहर करती है और उन्हें पुरुषों के बराबर नहीं बनाती है। दूसरी ओर, तथ्य यह है कि कई महिलाएं खुद को नारीवादी और धार्मिक दोनों के रूप में देखती हैं, जिसके अंतर्गत धर्म के नारीवादी दृष्टिकोण पर प्रश्न उठाए हैं। प्रस्तुत आलेख का मुख्य उद्देश्य बहस करना या यह तय करना नहीं है कि क्या धर्म पितृसत्तात्मक है, या क्या वह स्वाभाविक रूप से महिलाओं के लिए दमनकारी हैं? इसका उद्देश्य है उन महिलाओं के प्रति मुख्यधारा के नारीवाद की ओर से लगातार बहिष्कृत दृष्टिकोण पर सवाल उठाना है जिन्होंने यति धर्म के पालन का निर्णय लिया है ।

मूल शब्दः धर्म एवं स्त्री विमर्श, यति धर्म में स्त्री, जैन एवं बौद्ध धर्म

प्रस्तावना
सभ्यता एवं समाज के उद्भव एवं विकास की गाथा को चिंतकों ने अनेक दृष्टिकोणों से व्याख्यायित करने का प्रयास किया है। ये व्याख्याएं आर्थिक विकास के साथ बहुत ही नजदीकी संबंध रखतीं हैं। इसी प्रकार के चिंतन का एक पहलू है – नारीवाद। चिंतन की इस धारा ने व्यक्ति, समाज तथा परिवेश में सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं में दूरगामी परिवर्तन को प्रोत्साहित किया । नारीवाद शब्द को परिभाषित करना ही अपने आप में एक बहुत बडी चुनौती हो गई है। सशक्तीकरण, अधिकारों की मांग, आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक समानता आदि अनेक पहलुओं में स्त्री को केंद्र में रखकर विश्व में अनेक क्रांतियां हुई हैं । नारीवाद के अर्थ पर बहस अंतहीन लगती है। किसी भी सामाजिक आंदोलन का सामना करने वाली एक आम समस्या परिभाषा की हैरू हम किन लक्ष्यों के लिए लड़ रहे हैं, हमारे मूल्य क्या हैं, और हम परिवर्तन कैसे लाते हैं? नारीवाद के मामले में इन सवालों का जवाब समावेशी की तुलना में अधिक विभाजनकारी साबित हुआ है, और कई लोगों को अलग–थलग कर दिया है, जिन्हें पहले नारीवादियों के रूप में पहचाना जाता था। एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या नारीवाद को परिभाषित करना भी अपने आप में एक लक्ष्य होना चाहिए?
यह सर्वविदित है कि यति धर्म एवं ब्रह्मचर्य की परिकल्पना सिर्फ़ पुरुषों के लिए की गई थी, स्त्रियों के लिए नहीं। अनेक कारणों से ऐसा हुआ जिनकी चर्चा इस आलेख में नहीं की गई है। नारीवादी विद्वानों ने या तो इस विषय की उपेक्षा की है या इसे महत्वपूर्ण नहीं माना है तो दूसरी ओर धार्मिक प्रतिमान के संदर्भ में इसका अध्ययन किया गया है जिसमें स्त्रियों को मात्र धर्म के दृष्टिकोण से देखा गया है। अधिकांशतः यह पश्चिमी विद्वानों का दृष्टिकोण रहा है। मुख्य मुद्दों में से एक यह है कि जब धर्म को निर्विवाद रूप से दमनकारी रूप में देखा जाता है तो महिलाओं को अक्सर व्यक्तिपरकता से वंचित कर दिया जाता है। रहस्यवादी स्थिति में भक्त अपने आप को पत्नी तथा परमात्मा को पति के रूप में जब देखता (या देखती है) तो वह दमनकारी नहीं माना जाता । उसे भक्ति की पराकाष्ठा माना जाता है। इस बहस में एक मुख्य तर्क यह है कि धर्म सिर्फ़ पुरुषों के लिए ही नहीं स्त्रियों के लिए भी महत्वपूर्ण है। जबकि धर्म अपने आप में एक अत्यधिक विवादित शब्द है, इसमें कोई संदेह नहीं है कि कई लोगों के लिए धर्म, दुनिया को देखने और अनुभव करने के लिए, एक आध्यात्मिक ढांचा प्रदान करता है । यह आध्यात्मिकता एक ऐसी दुनिया में एक प्रति–बिंदु के रूप में भी कार्य करती है जिसमें अर्थ की अन्य सभी प्रणालियों में तर्कसंगतता को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है।
स्त्री संबंधी विमर्शों या वैशविक स्तर पर मानव सभ्यता के विकास के संदर्भ में, ऐतिहासिक एवं एन्थ्रोपोलोजी के दृष्टिकोण से विश्व के प्रमुख धर्मों के यति धर्म में स्त्री के स्थाम पर चर्चा, चिंतन या अन्वेषण उतनी मात्रा में नहीं हुआ है जितना होना चाहिए। यह सिद्ध हो चुका है कि अनादि काल से ही स्त्री ने, इस क्षेत्र में भी, योगदान दिया है। सामाजिक–सांस्कृतिक–धार्मिक सीमाओं के बावजूद स्त्री ने आध्यात्मिक अधिकार से अपने आप को वंचित नहीं रखा, भले हे उसे इसके लिए कितनी ही चुनौतियों का सामना ही क्यों न करना पडा हो। सामाजिक–धार्मिक दृष्टिकोण से स्त्री की सभी चुनौतियों का प्रारंभ इस आधार पर होता है कि मासिक धर्म के कारण स्त्री का शरीर अपवित्र है, कमजोर है। गर्भ धारण करने के कारण स्त्री के लिए ऐसी व्यवस्था का निर्माण किया गया जो उसे सुरक्षित रखने के ध्येय से तो बना परंतु वह उसके लिए दम–घोंटू बन गया । और तो और इसके लिए आध्यात्मिक / धार्मिक संहिताओं एवं ग्रंथों को उद्धृत किया गया । इन सीमाओं की उपेक्षा करते हुए, प्रतिरोध का स्वर बुलंद करते हुए, अपने आध्यात्मिक विकास हेतु, स्त्री ने यति धर्म के मार्ग को भी अधिकारवश अपनाया । यद्यपि वर्तमान परिदृश्य में इस क्षेत्र में भी अनेक परिवर्तन हुए हैं तथा स्त्री, पहले से कहीं अधिक सरलता के साथ इस मार्ग को अपनाती भी है एवं स्वीकृति भी होती है। प्रायरू उसके पीछे भी कोई राजनीति हो

सकती है परंतु यह अवसर मिलना ही अपने आप में इतना महत्वपूर्ण है कि स्त्रियां इसपर कोई प्रश्नचिह्न नहीं लगाएंगीं । यति धर्म का मार्ग कठिन है तथा यद्यपि समाज एवं परिवार के सहयोग एवं प्रोत्साहन की आवश्यकता होती है, तथापि सशक्तिकरण के कारण अधिकाधिक स्त्रीयां इस मार्ग को चुनने का धैर्य प्रदर्शित कर रही हैं ।

भारतीय चिंतन परंपरा में धर्म का एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। मानव सभ्यता के एक अटूट हिस्से के रूप में प्रस्तुत यह जीवन–तत्व हमारी सांस्कृतिक तथा वैचारिक इतिहास का एक अभिन्न अंग है। प्रायः प्रप्रथम साहित्यिक अभिव्यक्ति के लिए धर्म ही आधार बना था, अखिल ब्रह्माण्ड को समझने का एक प्रयत्न था, इस ब्रह्माण्ड में हम कहां हैं, हमारी स्थिति–गति क्या है, कहां से आए और कहां जा रहे हैं आदि आध्यात्मिक प्रश्नों का उत्तर भी हमें इसी धार्मिक मार्ग में चलने से प्राप्त होता है। इतना ही नहीं स्थूल शारीरिक स्तर पर भी, विग्यान के विकास के बहुत पहले, चिकित्सा, स्वास्थ्य आदि से जुडे दार्शनिक चिंतन के प्रारंभिक स्वरूप में भी धर्म का ही मार्ग अपनाया था ।

धर्म वो माध्यम है जिससे मानव जाति को आध्यात्मिकता, और विभिन्न नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों से संबंधित किया जा सकता है। प्राचीन भारत में, यह माना जाता है कि धार्मिक लोग मानव जाति के लिए पहले शिक्षक हैं। वे जीवन, मृत्यु, जीवन, भगवान, और विभिन्न प्रथाओं के लिए लोगों को बाध्य करने के नैतिक मूल्य प्रदान करते हैं। अधिकांश बच्चे इन धार्मिक लोगों के साथ शिक्षा चाहते हैं। कई धर्मों के अपने नैतिक मूल्य, व्यवहार शास्त्र और व्यवहार हैं। इन प्रथाओं में एक देवता, देवता, देवी, कर्तव्य, दावत, त्योहार, संगीत, नृत्य, कला के लिए अनुष्ठान, बलिदान शामिल हैं।

इस प्रकार गैर–अनुरूपता, गैर–पारिवारिक, गैर–मानक महिला तपस्वी, तपस्या की भारी मर्दाना दुनिया में एक अदृश्य प्राणी बनी हुई है, जहां महिलाएं, एक तपस्वी के रूप में, महिला के लिए, जगह बनाने के लिए वर्जनाओं से लड़ती हैं। 21वीं सदी के प्रारंभ से, वैकल्पिक विषयों के विषय पर, विद्वानों के बीच बहस होती रही है, जिसके बारे में मुख्यधारा की चर्चा में क्रांतिकारी पहचान की धारणा है। .स्त्री तपस्या ऐसी ही एक 'विद्रोही' पहचान है। हालाँकि, कई तपस्वियों के साथ–साथ गैर–साधुओं में भी यह सवाल उठ सकता है – 'क्या एक महिला एक वैध रूप में तपस्वी हो सकती है?' हाँ, वह कर सकती है, लेकिन रूढ़िवादी धार्मिक सिद्धांत के संदर्भ में, वह एक तपस्वी तभी बन सकती है जब उसका घरेलू क्षेत्र का त्याग पूरा हो जाए। पवित्रता और प्रदूषण की ऐसी धारणाएं तपस्वी परंपरा में लिंग संबंधों की नींव बनाती हैं, जिससे महिला तपस्वी समाज में अदृश्य हो जाती है। तपस्वी परंपरा में इतने पितृसत्तात्मक भेदभाव होते हुए भी, आश्चर्य की बात है, कि महिलाएं तपस्वी क्यों बन जाती हैं? अथवा किस प्रकार की स्त्रियाँ तपस्वी बन सकती हैं? समाजशास्त्र और नृविज्ञान से पता चलता है कि महिलाएं विधवा होने पर एक तपस्वी जीवन शैली अपनाती हैं, ताकि सांप्रदायिकतावाद द्वारा लगाए गए विधवापन से जुड़े सामाजिक कलंक से बच सकें। दूसरों का मानना है कि तपस्या इन महिलाओं द्वारा अपने परिवार के करीबी सदस्यों की मृत्यु के बाद भीख मांगने की अपरिहार्य स्थिति से बचने के लिए अपनाया गया मार्ग है, विशेषतः उनके पति का। एक महिला के लिए एक तपस्वी बनना, निर्धारित सांस्कृतिक मानदंडों पर सवाल उठाना है। उसकी। इस मानक संरचना से बाहर कदम रखने का प्रयास महिला तपस्वी को 'बाहरी व्यक्ति' का दर्जा देता है। इसका कारण यह है कि उसने न केवल जीवन के एक निश्चित तरीके को अपनाने के लिए चुना है, एक ऐसा जीवन जो मुख्य रूप से पुरुषों के लिए निर्धारित है, बल्कि आलोचनात्मक होने और मौजूदा सामाजिक व्यवस्था पर सवाल उठाने के लिए भी चुना है। रूढिवादियों के अनुसार लिंग के निर्धारित मानदंडों में यह श्विचलनश, मौजूदा सत्ता संरचना के लिए एक खतरे के रूप में माना जाता है जो पुरुष तपस्वियों को विशेषाधिकार देता है। नतीजतन, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि पुरुष तपस्वी महिलाओं के संन्यासी होने का बिल्कुल भी विरोध करेंगे।

जब तपस्या की बात आती है, तो दीक्षा समारोह एक महिला को उसके गृहस्थ कर्तव्यों से अलग करने का प्रतीक है। ये दीक्षा अनुष्ठान महिलाओं को उनकी पिछली सामाजिक पहचान से मुक्त करते हैं, जिसमें कभी–कभी विभिन्न पहचान चिह्नों को छोड़ना शामिल हो सकता है जो लोगों को किसी की सामाजिक भूमिका और स्थिति की पहचान करने में मदद करते हैं। सामान्य महिलाओं के तपस्वियों में परिवर्तन के रूप में वे अपने कपड़े, बाल, नाम, जाति और पारिवारिक संबंध। मोक्ष की तलाश में ये महिलाएं यति होने अपनी नई पहचान को अपनाती हैं। एक पहचान, जिसमें वे अब किसी के माता–पिता, बहन या पत्नी नहीं हैं। यह लगभग वैसा ही है जैसे महिलाओं ने अपनी पूर्व पहचान का अंतिम बलिदान करने के बाद अलग–अलग रूपों में पुनर्जन्म लिया हो। जिस प्रकार से ये महिलाएं पारंपरिक लिंग मानदंडों का साहसपूर्वक अवहेलना करती हैं, और अपने पुरुष तपस्वी समकक्षों के स्तर तक खुद को ऊपर उठाने के लिए दृढ़ इच्छाशक्ति रखती हैं वह वास्तव में असाधारण दृश्य है । सामाजिक बाधाओं के कारण ये मार्ग बहुत दुर्गम हैं, महिलाओं को अक्सर अपने धार्मिक अनुभव को एक निजी के रूप में जीना पड़ता है या उनका पालन करने के लिए क्रांतिकारी तरीके से सामाजिक मानदंडों को काटना पड़ता था। इस हतोत्साहकारी वातावरण के परिणामस्वरूप, भारतीय साधारण और तपस्वी समाजों द्वारा महिलाओं की भागीदारी को स्वीकार करने और एक असाधारण वास्तविकता के बजाय एक सामान्य वास्तविकता के रूप में स्वीकृति में कमी है। आधुनिक भारत में यह स्थिति धीरे–धीरे परिवर्तित हो रही है। तपस्या का मार्ग अभी भी कठिन है और इसे परिवार और समाज के विरोध का सामना करने के लिए एक गहरी प्रेरणा और एक मजबूत व्यक्तित्व की आवश्यकता है ।

भारतीय यति परंपरा के विकास में हिंदू, जैन एवं बौद्ध धर्मों का बहुत महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यद्यपि गार्गी, मैत्रेयी आदि ब्रह्मवादिनियों के विषय में विषद वर्णन प्राप्त होते हैं तथापि जैन एवं बौद्ध धर्मों में यति धर्म में स्त्रियों को प्रोत्साहन अधिक प्राप्त हुआ। इन धर्मों में स्त्री यतियों के लिए विशेष संस्थाओ की स्थापना की गई जो, इनके अपने धार्मिक नियमों पर आधारित, बहुत ही सुचारुपूर्वक संचालित थे। परंतु हिंदू धर्म में प्रायरू यह संरचना की कमी थी जिसके कारण यह बहुत बिखरा हुआ है तथा इसमें विकास उतना नहीं हो पाया है जितना जैन एवं बौद्ध परंपराओं में हुआ है। बौद्ध मत में इन्हें भिक्खुणी तथा जैन में इन्हें साध्वि कहा जाता है। हिंदू धर्म में अनेक परंपराओं के होने के कारण वो यति स्त्री जिस परंपरा का पालन करती हैं उस आधार पर उन्हें संबोधित किया जाता है। जैसे सन्यासिनी, योगिनी, नागा, साध्वी या साधुनी आदि। यहीं से इन धर्मों में अंतर प्रारंभ होता है। इसी से स्पष्ट हो जाता है कि प्रायरू जैन एवं बौद्ध की भांति हिंदू धर्म ने इस प्रक्रिया के प्रति विशेष आग्रह प्रदर्शित नहीं किया है।

जैन एवं बौद्ध स्त्री यतियों का एक विशेष पोशाक होने के कारण उन्हें कहीं पर भी पहचाना जा सकता है परंतु हिंदु यति–स्त्रियों के साथ ऐसा नहीं है। वो गेरुआ या सफ़ेद किसी भी रंग के वस्त्र धारण कर सकती हैं । पहनने के तरीके से भी दुविधा उत्पन्न होती है। कुछ तो साधुओं की ही भांति अर्ध–नग्न होती हैं तो कुछ सामान्य स्त्रीयों की भांटि पूरी तरह से ढंकी हुई। कई सन्यासिनियों की जटाएं होतीं हैं तो कई सामान्य केश धारण किए हुए हैं । जैन एवं बौद्ध यतियों के पोशाक को पहनने का एक विशेष तरीका है जो हिंदू स्त्री–यतियों में नहीं है। इसके अलावा जैन साध्वियों की एक विधि है जिसके अनुसार वे अपना केश नोच–नोच कर निकालती हैं, इसके पीछे एक प्रबल दार्शनिक चिंतन है। बौध भिक्खुनियां सर मुंडवा लेतीं हैं, भिक्खुओं की भांति। प्रायरू तन को ढंकने के पीछे एक प्रबल सांस्कृतिक चिंतन है जिसके अंतर्गत स्त्री के शरीर का प्रदर्शन मान्य नहीं है। यति–स्त्रियों के लिए आवश्यक होता है कि आकर्षण के जितने भी आयाम हो सकते हैं उनको छुपा देना है, समाप्त करना है। अतरू भले ही पुरुष–यतियों को कुछ भी न पहनने की अनुमति मिलती हो, जैसा कि जैन एवं हिंदुओं में होता है, स्त्रियों को यह स्वतंत्रता नहीं है।

सांसारिक सुखों का त्याग कर देने के कारण ये स्त्री–यतियां कभी भी एक ही स्थान में अवश्यकता से अधिक नहीं रुक सकतीं। उन्हें हमेशा चलते ही रहना है, भ्रमण करते रहना है। इसके पीछे का कारण यह है कि सांसारिक सुखों का त्याज किए इन यतियाओं के धार्मिक संहिता के अनुसार अनासक्ति का अभ्यास अनिवार्य है जिसके अंतर्गत उनके पास कोई स्थाई वस्तु नहीं होनी चाहिए। यह परंपरा इन तीनों धर्मों में महत्वपूर्ण हैं। सदा विचरण करते रहने कि नियम का पालन करते हुए जैन साध्वियों को अपने समाज से बहुत सहायता प्राप्त होती है। जैन समाज के श्रावकों का यह कर्तव्य होता है कि साधुओं एवं साध्वियों के विहार में उनका सहयोग दें। विशेषतः साध्वियों की सुरक्षा हेतु उनके साथ ही चलना बहुत श्रेष्ठ माना जाता है। हिंदू संन्यासिनियों का बाहर निकलना मान्य नहीं है। अपने धार्मिक जीवन का आचरण उन्हें अपने मठों की चहारदीवारी के भीतर ही करना होता है। यदि कोई सन्यासिनी किसी समूह में है तो वो उसी समूह के साथ ही भ्रमण कर सकती है। आज भी जब एक स्त्री सांसारिकता का त्याग कर, एक आध्यात्मिक जीवन का चयन करती है तो समाज उसके पीछे के कारणों की पडताल ही करता रहता है। लेकिन यही बात पुरुषों पर लागू नहीं होती। यह मानसिकता हमारी पितृसत्तात्मक चिंतन के प्रति संकेत देती है।

इन तीनों धर्मों के अंतर्गत साध्वियां धार्मिक जीवन व्यतीत करती है। भिक्षाटन, धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन, स्वाध्याय, मौन अभ्यास, ध्यान, ग्रंथों में उल्लिखित तपस्या का अभ्यास, धर्म का प्रचार–प्रसार, समाज सेवा आदि में अपने आप को मग्न रखती हैं। सभी कार्यों में उन्हें संयम का पालन करना होता है। खान–पान, रहन–सहन, वस्त्र, वार्तालाप आदि सभी में संयम का पालन किया जाता है। मौन धारण करना, व्रत–उपवास, तीर्थाटन सभी धर्मों में समान रूप से विद्यमान हैं।

इन तीनों धर्मों में गुरु का स्थान सर्वोपरि है एवं साध्वियों के मार्गदर्शन के लिए एक गुरु का होना अनिवार्य है। अपने आध्यात्मिक झुकाव के आधार पर गुरु का चयन किया जाता है। इन तीनों परंपराओं की मान्यता है कि शिष्य की आध्यात्मिक इच्छा इतनी प्रबल होती है कि गुरु अनायास ही, अपने आप ही, शिष्य का चयन करते हैं। गुरु के अभाव में आध्यात्मिक जीवन एवं अभ्यास निरर्थक माना जाता है। व्यवस्थित संघ होने के कारण जैन एवं बौद्ध स्त्री–यतियों की संख्या का आकलन करना बहुत कठिन नहीं है। परंतु अधिकांशतः, समाज की नजरों से छुपे होने के कारण, हिंदू यति–स्त्रियों की संख्या का अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

भिक्षुओं, धार्मिक पुरुषों और धार्मिक सिद्धांतों के लिए, महिलाओं की देखभाल ने एक दुविधा प्रस्तुत कीरू वे धार्मिक महिलाओं की मदद करना चाहते थे, लेकिन साथ ही, वे महिलाओं की उपस्थिति से खुद को दूर करना चाहते थे क्योंकि उन्हें चिंता थी कि महिलाओं के साथ संपर्क रखने से कहीं उनकी पवित्रता की शपथ भ्रष्ट न हो जाए। महिलाओं के लिए, पुरुषों की देखभाल सुविधाजनक थी, लेकिन इसने उन पर निर्भरता का बोझ भी डाल दिया। सहयोग करने की उनकी कथित आवश्यकता से उत्पन्न तनाव और साथ ही साथ बातचीत को सीमित करने की इच्छा महिला मठवाद के इतिहास को रेखांकित करती है।

महिला सशक्तिकरण की प्रक्रिया कोई नई बात नहीं है। यह पूरे इतिहास में सभी समाजों में रहा है। अब इसे विकसित किया गया है और महिलाओं के कल्याण द्वारा उनके विकास के लिए, निर्णय लेने की प्रक्रिया में उन्हें शामिल करने के दृष्टिकोण से, एक नया आकार दिया गया है। महिलाओं के सशक्तिकरण में महिलाओं को आर्थिक रूप से स्वतंत्र, आत्मनिर्भर बनाना, उन्हें किसी भी कठिन परिस्थिति का सामना करने में सक्षम बनाने के लिए सकारात्मक सम्मान देना और उन्हें समाज में सभी विकासात्मक गतिविधियों में भाग लेने और नेतृत्व करने के लिए तैयार करना शामिल है। सशक्त महिलाओं को समाज और राष्ट्र में महत्वपूर्ण निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग लेने में सक्षम होना चाहिए। महिलाओं के सशक्तिकरण में शिक्षा सबसे अहम भूमिका निभाएगी | 'सशक्तिकरण' की अवधारणा शक्ति से निकलती है और लोकप्रिय समझ में श्शक्तिश शब्द को 'कुछ भी करने की क्षमत' के रूप में समझा जाता है। समाजशास्त्र में, 'शक्ति' को अधिकार, आदेश का अधिकार, शासन या शासन करने का अधिकार, प्रभावित करने की क्षमता आदि के रूप में समझा जाता है। इस प्रकार सशक्तिकरण का सीधा अर्थ है शक्ति को निहित करना जहां वह मौजूद नहीं है या अपर्याप्त रूप से मौजूद है। श्सशक्तिकरणश शब्द का अनिवार्य रूप से अर्थ सत्ता और शक्ति का विकेंद्रीकरण है। इसका उद्देश्य निर्णय लेने की प्रक्रिया में वंचित वर्गों के लोगों की भागीदारी प्राप्त करना है।

यह संतुलन उन असंख्य महिलाओं के जीवन का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू है, जो धर्म को अपने दैनिक जीवन के आंतरिक पहलू के रूप में अनुभव करती हैं। उद्धरण एक और महत्वपूर्ण बिंदु पर भी प्रकाश डालता हैरू नारीवाद को, वास्तविक महिलाओं के विभिन्न विचारों को, सुनने की जरूरत है। अनन्य के बजाय समावेशी बनने की अपनी लड़ाई में, विभिन्न नारीवादी परियोजनाओं को नारीवाद से दूर जाने और कई नारीवादों के विकल्प का पता लगाने का प्रयास करने की आवश्यकता है। हमारी जैसी जटिल दुनिया में, कोई भी दो वास्तविकताएं समान नहीं हैं, जिसका अर्थ है कि हर एक महिला अलग तरह से उत्पीड़न का अनुभव करेगी। इसका मतलब यह भी है कि हर एक महिला को अलग तरह से शांति मिलेगी।

संदर्भ सूची

1. स्त्रीः मुक्ति का सपना (संयुक्तांक 59–60, अक्टूबर 2003 – मार्च 2004) अतिथि संपादक– अरविन्द जैन, लीलाधर मंडलोई (पुस्तक रूप में वाणी प्रकाशन से प्रकाशित)
2. भावना मासीवाल, स्त्री विमर्श का स्वरूप, अपनी माटी, (ISSN 2322&0724 Apni Maati) वर्ष–2,अंक–22(संयुक्तांक),अगस्त,2016
3. स्त्री विमर्श | हिन्दीकुंज, Hindi Website@Literary Web Patrika www-hindikunj-com
4. कात्यायनी, स्त्री प्रश्नः परम्परा, आधुनिकता और उत्तर–आधुनिकता के सन्दर्भ में एक विमर्श, http:@@naandipath-in › archives
5. अध्याय 1 उत्तर–आधुनिक विमर्श – shodhganga-inflibnet-ac-in@jspui@bitstream@---@05&chapter%201-pdf